यह इष्टोपदेश, आठवीं गाथा (चलती है)। सत्यस्वरूप क्या है और सत्यस्वरूप में असत्यरूप मानते हुए कैसे मोह करके दु:खी होता है, उसकी यह व्याख्या है। आठवीं गाथा का अर्थ, देखो! **यद्यपि शरीर,..** यह शरीर परद्रव्य है।

मुमुक्षु : कब?

उत्तर : अभी। फिर कब क्या? यह किसका? यह तो जड़ है, मिट्टी है।

मुमुक्षु : वह तो जीव चला जाये तब?

उत्तर : परन्तु जीव चला कहाँ जाये? जीव जाये कहाँ? अन्यत्र जाये तो दूसरा शरीर (मिले)। जाना कहाँ था?

इसीलिए तो शब्द पड़ा है, देखो! अन्दर आता है न? सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव लिया है न? शरीर का सर्वथा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अन्य स्वभाव है। शरीर का, ठीक! पहला शरीर शब्द है या नहीं? यह आज उकताकर आये थे। सिर फोड़ूँ, कल तो मर जाऊँ... यह तो दो दिन हो और हुआ। दो दिन हों और कुछ मोह का भूत लगे, मोह!

मुमुक्षु : आपने तो कहा मोह का?

उत्तर : यहाँ यह मोह की तो बात चलती है। यह शरीर जड़ है, मिट्टी रजकण है, अजीवतत्त्व है, उसका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आत्मा से सर्वथा अन्य स्वभावी है। अन्य स्वभावी। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह इतना सब मोह किसका आ गया ?

उत्तर : यह मोह आया, किया इसलिए आ गया। कहाँ आ जाये ? तुम यह मोह अन्दर से खड़ा करते हो।

मुमुक्षु : परन्तु आ कहाँ से गया ?

उत्तर : हाँ, मोह को, खड़ा कैसे हो गया व्यर्थ का अपने आप ? करे स्वयं।

मुमुक्षु : घर में आ कैसे गया ?

उत्तर : करता है स्वयं, आता कहाँ है ? करता स्वयं और फिर आ गया कहाँ ? इसका अर्थ क्या ? यह तो यहाँ कहते हैं। आहा...हा... !

कहते हैं कि शरीर के रजकण-रजकण, यह परमाणु है यह तो, यह कहीं एक वस्तु नहीं, बहुत रजकणों का समूह है तो प्रत्येक शरीर का एक-एक रजकण आत्मा के स्वभाव से उसके द्रव्य का स्वभाव अन्य है, क्षेत्र अन्य है, उसकी दशा अन्य है और उसका भाव / गुण भी अन्य है। तथापि मूढ़ ये मेरे मानकर उनका रक्षण करूँ और उनसे ठीक होवे तो मुझे ठीक और अठीक होवे तो मुझे अठीक, उसमें रोग होवे तो अठीक, यह मिथ्यादृष्टि पाखण्डभाव करके अनादि से ऐसा भटक रहा है। समझ में आया ?

शरीर,.. देखो ! **घर,..** मकान। उसका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अत्यन्त भिन्न है। इस आत्मा का स्वभाव आनन्द और ज्ञान है, उसका क्षेत्र यहाँ आत्मा में, उसकी दशा वर्तमान पर्याय में, उसकी शक्ति-गुण त्रिकाल वे स्वयं में हैं वे तो। परन्तु वह स्वयं कौन है, इसके भान बिना इस शरीर के मोह में और घर के मोह में 'मेरे अथवा मेरे जैसे, ये मेरे जैसे मेरी जाति के हैं'—ऐसा मानकर जिसके घर में परद्रव्य है, वह वस्तु ही पर है, क्षेत्र, काल, भाव अत्यन्त (भिन्न है)। मोह में **जाल में फँसकर..** स्वयं उसमें फँसता है। अनादि से मूढ़ अपने वस्तु के स्वभाव को भूलकर उसमें फँसता है। जीव वहाँ फँसा। घर। ऐसे स्त्री।

धन,.. धन, वह लक्ष्मी। लक्ष्मी के रजकण, रजकण आत्मतत्त्व से (भिन्न है) उसका द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसका क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई, उसका काल अर्थात् लक्ष्मी की दशा-अवस्था और भाव अर्थात् उसकी शक्ति—सब आत्मा के स्वभाव से लक्ष्मी का अन्य

स्वभाव है परन्तु मूढ़ उस लक्ष्मी को नहीं... गया तो अरे...रे! हाय! हाय! (गया) आवे तो (प्रसन्न होता है) वह परद्रव्य को स्वद्रव्य मानकर मूढ़ पर में हितबुद्धि से भटक रहा है। आहा...हा...! उसे पता नहीं (कि) क्या स्व है और क्या पर है।

मुमुक्षु : मेहनत करके कमाया...

उत्तर : मेहनत कौन कमाता था? धूल। तूने राग किया था। कमाया कब? पैसे कब इसके थे? इसके बाप के थे? इसके थे? कहो, पूनमचन्द के हैं पैसे? या उसके पिता के हैं? आहा...हा...! यहाँ तो एक द्रव्य जो वस्तु अपनी है, वह अपने अतिरिक्त के अन्य पदार्थ के जितने सर्वथा भिन्न स्वभावी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव हैं, उन्हें ठीक होवे तो कुछ भी अन्दर उल्लास आवे, अठीक होवे तो (द्वेष) आवे, वह सब मोह-मिथ्यात्वभाव करके, पर को अपना मानकर महा अधर्म-पाप उत्पन्न करता है और अधिक पाप का सेवन करके उससे दुर्गति में अधिक जायेगा - ऐसा करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! लक्ष्मी, परन्तु लक्ष्मी तो धूल है, तेरी चीज़ कहाँ थी?

मुमुक्षु : यह कमाऊँ न?

उत्तर : कमाऊँ कब? धूल में भी कमाऊँ नहीं। इसने राग किया था। वह चीज तो उसके कारण आयी है। क्या राग के कारण आयी है? समझ में आया? राग का भाव तुझमें है और उसकी अवस्था और उसका भाव उसमें है, उसकी अवस्था और उसका भाव उसमें है। वह क्या तेरे कारण आती है? परवस्तु को और स्व को अत्यन्त भिन्नता है, ऐसा न मानकर दोनों को एक मानकर मिथ्या बुद्धि, असत्य बुद्धि, पाप बुद्धि, दुःख बुद्धि, नये पाप को उत्पन्न करती है और फिर माने कि हमने ठीक किया। आहा...हा...!

स्त्री,... स्त्री का आत्मा और उसका शरीर अत्यन्त अन्य स्वभावी है। इस आत्मा का स्वभाव यहाँ है, उसका स्वभाव उसके आत्मा में है। इस जड़ के उसके शरीर का स्वभाव जड़ में। दोनों अत्यन्त भिन्न हैं, तथापि यह स्त्री मुझे सुख देती है, प्रतिकूल होवे तो दुःख देती है-ऐसा मूढ़ मिथ्या मान्यता, पाखण्ड बुद्धि, भ्रम उत्पन्न करके नये अनन्त पाप नये बाँधता है। आहा..हा...! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : हमारी एक बात भी रहनेवाली नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारी नहीं, दुनिया की पूरी की।

मुमुक्षु : यह बात तो ठीक है परन्तु घर के ऊपर तो राग होता है न...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह यही कहते हैं। वह परद्रव्य है या स्वद्रव्य है ? वह परपदार्थ है या स्वपदार्थ ? यह प्रश्न (है) मेरा।

मुमुक्षु : घर के-कुटुम्ब के तो अपने कहलाते हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : घर का कब इसके पिता का था इसका किसी का ? द्रव्य ही पर का है। वह आत्मा कहाँ से (तेरा हुआ) ? अभी दूसरा दृष्टान्त देंगे। कहीं से आया और कहीं चला जाता है। वह तेरे कारण आया नहीं और तेरे कारण जायेगा नहीं। मूढ़ व्यर्थ में परद्रव्य में अपना मानकर, महा असत्य बुद्धि सेवन कर, नयी प्रतिकूलता खड़ी करता है। आहा..हा..! कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : दूसरे को नहीं थे और हमारे लड़के हुए ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसके लड़के ? लड़का कैसा ? उसे इसने उत्पन्न किया है ? उसके-लड़के के आत्मा को उत्पन्न किया है ? उसके शरीर को उत्पन्न किया है इसने ? शरीर तो जड़ है। आत्मा जड़ को उत्पन्न करे ? आत्मा उसके आत्मा को उत्पन्न करे ? उत्पन्न किया अर्थात् क्या ?

मुमुक्षु : जनक कहलाता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : जनक अर्थात् क्या ? वह तो निमित्तरूप से बोला जाता है। आत्मा तो उसका है और शरीर उसका है। उसके रजकण जड़ हैं। इस आत्मा ने उसे उस पदार्थ को बनाया होगा ? लड़के के आत्मा को इसने बनाया है ?

मुमुक्षु : इस अधिक गहरे पानी में किसलिए उतरना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया। नहीं गहरे में उतरना हो तो गहरा भटके। कैसे ? भलीभाँति गहरा भटके।

यहाँ तो स्व और परद्रव्य के बीच के विवेक की बात करते हैं। जिसे स्व और पर के विवेक की भिन्नता भासित नहीं होती, वह पर को अपने समान अथवा स्वयं वह है—ऐसा मानकर हैरान होकर चार गति में अनन्त काल से भटक रहा है। समझ में आया ?

इसी प्रकार **पुत्र,..** लो! उस पुत्र का आत्मा अलग, उसके कर्म अलग, उसका शरीर अलग, उसके रजकणों का पदार्थ, पदार्थ ही भिन्न है। उसमें तेरा पदार्थ कहाँ से आ गया वह?

मुमुक्षु : पदार्थ भिन्न हो, तब तो पुत्र कहलाता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु किसका पुत्र? इसने पुत्र को उत्पन्न किया है? उसके आत्मा को उत्पन्न किया है? भ्रम, वह भ्रम। आठ पंसेरी की भूल - एक मण में आठ पंसेरी। अर्थात्? पूरी-पूरी (भूल है)। यह तो वस्तु स्वतंत्र जगत के तत्त्व हैं। अजीव या जीव अनन्त दूसरे जगत के अस्तित्ववाले पदार्थ हैं। तू भी अस्तित्ववाला पदार्थ है तो इस अस्तित्ववाले का वह अस्तित्ववाला कहाँ से हो गया? समझ में आया?

पुत्र, मित्र,.. प्रिय मित्र, ऐसा बोले वहाँ ऐसा-ऐसा ऐसे दोनों सायंकाल इकट्ठे हों, ऐसे घूमने गये हों और... आहा..हा..! उसमें बैठा हो ऐसे, ओहो..! मानो एक-दूसरे... कुछ नहीं, तू कोई और यह कोई है परन्तु व्यर्थ में हैरान हो गया है।

मुमुक्षु : उसके साथ अन्तरंग की बातें करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; दोनों व्यक्ति एक साथ बैठकर अन्तरंग की बातें करते हैं। फिर ऐसी व्यक्तिगत कहनी हो तो कान में कहे। गुलाबभाई! यह मूर्खता, वह भी कोई कम है? कहते हैं। कहाँ परवस्तु... वह मरकर वहीं का वहीं एक जरा सा ऊ..हु... हुआ, परन्तु क्या हुआ? अरे! मैं अकेला हूँ न, भाई! अन्दर बहम नहीं पड़ जाये दूसरे को? कि यह थे और इसे यह हुआ? परन्तु वह परद्रव्य है। शरीर परवस्तु है, उसकी अवधि से वहाँ शरीर रहता है, उसकी अवधि से आत्मा अपने काल से रहता है, तेरे कारण और तेरे भाव से बिलकुल नहीं रहता। आहा..हा..! कहो, समझ में आया?

शत्रु.. लो! जगत में कौन शत्रु है? दूसरा प्रतिकूल मानता है। शत्रु का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भिन्न है। वह कहाँ तुझे नुकसान करता है? तथा हैरान भी कहाँ करता है? और हित भी कहाँ करता है? हैरान-हित कोई परद्रव्य नहीं करता। तेरे भाव में आत्मा ज्ञानानन्द स्वभाव को भूलकर, 'यह मुझे नुकसान, यह मुझे लाभ करता है' - ऐसी मान्यता अर्थात् भ्रमणा को, मात्र भ्रमणा को घोंट रहा है। असत्य की भ्रमणा को घोंट रहा है। उसका फल

तो विपरीत बन्ध के पड़कर अनन्त काल से चार गति में भटकने के आते हैं। आहा..हा..!

शत्रु आदि सब अन्य स्वभाव को लिये हुए.. देखो! सबको पहले से ले लेना। **शरीर अन्य स्वभाव को लिये हुए, घर अन्य स्वभाव को लिये हुए, स्त्री, पुत्र, मित्र अन्य स्वभाव को लिये हुए,..** यह उनका अन्य स्वभाव जड़ का और आत्मा का दूसरा है। **अन्य हैं,..** आत्मा से बिलकुल भिन्न है। कैसे होगा इसमें? फावाभाई! मनहर के आत्मा के कारण तो इसे कुछ ठीक होता है या नहीं? कोई बोले कि बापू... बापू करे तो ठीक होता है या नहीं? अब बापू! तुम खर्च करो, खर्च करो, दो-पाँच हजार, हों! मेरी वह नहीं रखना।

मुमुक्षु : दो-पाँच हजार न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब तो दो-चार लाख खर्च हुए हों, वह दो-चार लाख दे दे? कहो, समझ में आया? सब धूल और धाणी व्यर्थ की ममता.. ममता... ममता... पैसा भी कोई और पुत्र भी कोई परचीज़। वह चीज़ भिन्न है और यह चीज़ भिन्न है। इसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव (भिन्न हैं)। यहाँ 'सर्वथा' शब्द प्रयोग किया है न? सर्वथा शब्द है, देखो! अन्दर में अर्थ में आयेगा।

परंतु मूढ प्राणी मोहनीयकर्म के जाल में फँसकर.. हों! कर्म के कारण नहीं। कर्म परद्रव्य है। **जाल में फँसकर..** देखो! है न? '**स्वानि प्रपद्यते**' यह मानता है, स्वयं मानता है, ऐसा कहना है न? अर्थात् मानता है, इसलिए हो गया, समाप्त हो गया। यह मोह के कर्म के वश पड़ा है। **इन्हें आत्मा के समान मानता है।** भाई! हम और शरीर एक हैं। दोनों एकसाथ में साथ हैं, साथ कब था? तू तो अनन्त काल का है और यह तो नया आया है। तू अनन्त काल का अनादि का है और यह तो नया आया है। वह कब था? रजकण तेरे पास थे कब? अन्य भव में दूसरे रजकण थे, अन्य भव में तीसरे थे। अब यह तो वे रजकण आते और जाते हैं। वे तो भिन्न-भिन्न हैं परन्तु यह उनके अवयव देखकर ये मेरे अवयव, ऐसी आँखें गोल चक्क और यह और यह, मुँह और अंतरडुं और यह लाल यह कुण्डल जैसे कान और गरुड़ जैसा नाक और आँखें हिरण के जैसी आँखें और मुँह चन्द्रमा जैसा... धूल जैसा और वैसा साहित्यकार लिखते हैं न ऐसा? भाई! '....' लिखें,

हों! साहित्यकार कवि जब कवित्त करते हैं (तब ऐसा लिखते हैं)। पूरणसिंह! यह पैर कैसा? केले के थम्ब जैसा। वह केले का होता है न? थम्ब। केले का थम्ब। हाथ ऐसा मुलायम... धूल में भी नहीं। यह पाखाने का थम्ब है। यह विष्टा और पेशाब रहे, उसका थम्ब है। आहा..हा..! अरे रे! इसे आत्मा कौन? और परद्रव्य कौन? (इसका) पता नहीं होता और परद्रव्य को अपना मानकर मूढ़ होकर बड़े दुःख पर पड़ रहा है। आहा..हा..! समझ में आया?

विशदार्थ – स्व और पर के.. देखो! स्पष्टीकरण यह है न मूल तो। '**स्वपरविवेक-ज्ञानहीनः**' है न मूल तो? स्व और पर के विवेक अर्थात् भिन्नता। आत्मा स्व और शरीर, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, लक्ष्मी पर-दोनों के विवेक, विवेक अर्थात् भिन्नता, भिन्नता के ज्ञान से रहित। दोनों भिन्न-तीनों काल भिन्न हैं, तथापि दोनों की भिन्नता के भानरहित मूढ़ **शरीर आदिक पर पदार्थों को आत्मा व आत्मा के स्वरूप ही समझता रहता है।** यह हम हैं और या वह हमारा स्वरूप है, हम एक ही जाति हैं और हमारा अंग है न! लोग नहीं कहते हैं कि भई! डण्डा मारने से पानी कहीं अलग पड़ता है? डण्डा मारने से पानी (भिन्न नहीं पड़ता), इसी प्रकार यह सब हम एक ही हैं, बापू! हम एक अंगी कहीं भिन्न पड़ते हैं? भिन्न ही है। अब सुन न! डण्डा मारने से पानी क्या, पानी के रजकण-रजकण भिन्न हैं, पानी के रजकण-रजकण भिन्न हैं। प्रत्येक पॉइन्ट - रजकण-रजकण का अस्तित्व और पानी का सत, एक-एक रजकण पॉइन्ट भिन्न-भिन्न है। किसी रजकण का सत् किसी रजकण रूप के सत्रूप से अस्तित्वरूप नहीं होता। किसी की मौजूदगी, किसी की मौजूदगी में प्रविष्ट होकर अस्तित्व नहीं रखता। आहा..हा..! पता नहीं होता कि स्व क्या और पर क्या?

स्व और पर के विवेकज्ञान से रहित पुरुष शरीर आदिक पर पदार्थों को आत्मा व आत्मा के स्वरूप ही समझता रहता है। अर्थात् दृढ़तम मोह से वश.. देखो! दृढ़तम (लिया है)। यहाँ तो मिथ्यादृष्टि की बात है, हों! सम्यग्दृष्टि पर को अपना अंश (भी) नहीं मानता। गृहस्थाश्रम में रहने पर भी, लाखों स्त्रियाँ होने पर भी, राजपाट में पड़ा होने पर भी, एक अंश भी यह मेरी चीज़ नहीं है; मैं तो ज्ञान और आनन्द हूँ। मात्र मुझमें जरा असक्ति का राग का अंश होता है, वह मेरी कमजोरी का पाप है परन्तु उस चीज़ के कारण मुझे सुख है या वह चीज़ मेरी है—ऐसा सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में रहने पर भी

(मानता नहीं है) । समझ में आया ? एक अंश भी मेरे आत्मा के अतिरिक्त राग भी मेरा नहीं है, वह बन्ध का कारण और उत्पन्न हुआ विकार दु:खरूप है तो दूसरी चीज़ तो मेरी है नहीं।

सम्यग्दृष्टि धर्मी स्त्री को देखकर सुख नहीं मानता। आहा..हा.. ! समझ में आया ? शत्रु को देखकर दु:ख नहीं मानता। वह परद्रव्य मुझे दु:खदायक है ? नहीं; परद्रव्य दु:खदायक नहीं हो सकता। तेरी विपरीत मान्यता तुझे दु:खदायक है और सुलटी मान्यता- आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप का भान तुझे सुखदायक है; इसके अतिरिक्त कोई परपदार्थ सुखदायक-दु:खदायक है ही नहीं। कहो, समझ में आया इसमें ? आदि शब्द में सब लिया है। हमारा देश। देखो न ! देश के लिये मरते हैं या नहीं ? ज्ञानानन्दस्वरूप स्वयं है, उसे अपनी अस्ति का भान नहीं है। वह पर-अस्तिवाले पदार्थों से सुख और दु:ख की कल्पना करके मिथ्याभ्रम में (भटक रहा है) । भ्रमणा का फल क्या होगा ? भ्रमण। भ्रमणा का फल भ्रमण - चौरासी का अवतार है। आहा..हा.. !

कहते हैं कि **मोह से वश प्राणी देहादिक को (जो कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव लक्षणरूप हरेक प्रकार से)..** अर्थात् अर्थ है न ? **(आत्म स्वभाव से भिन्न स्वभाववाले हैं)..** कहाँ भगवान आत्मा ! वह तो ज्ञान, आनन्द, शान्ति, श्रद्धास्वरूप आत्मा है। बहुत तो अन्दर उसकी एक समय की पर्याय में विकार करे परन्तु फिर भी वह विकार कहीं उसका स्वरूप नहीं हो जाता। जिसका स्वरूप होता नहीं, उसे अपना मानना, उसका नाम भ्रम है। विकार के परिणाम को भी अपना मानना, वह भ्रमणा है। आहा..हा.. ! इसकी भूल की इसे खबर नहीं पड़ती। यह भूल होगी ? यह भूल होगी ? या यह मेरा गुण है ? है भूल और माने गुण। अब वह भूल किस प्रकार निकले इसे ?

प्रत्येक चीज़ शरीर आदि, देश आदि या शत्रु-मित्र आदि के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, लक्षण.. सबके लक्षण ही भिन्न हैं। (उसे) **आत्मा मानता है और दृढ़तर मोहवाला प्राणी,..** वापस साधारण दृढ़मोह नहीं, आसक्ति का नहीं जरा सा; यह तो दृढ़तर मोहवाला प्राणी। ओहो.. ! शरीर की अनुकूलता हो न, बापू ! तो अपने को ठीक पड़े, हों ! उस जड़ के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ठीक रहे तो तुझे ठीक पड़े, इसका अर्थ क्या ? वह तो मिट्टी है, अजीवतत्त्व है, रूपीतत्त्व है, मूर्ततत्त्व है; तू अमूर्ततत्त्व है, दोनों तत्त्व-तत्त्व की जाति ही अलग है। जाति भिन्न और दूसरी जाति तुझे लाभदायक हो (यह तेरी भ्रमणा है), भ्रमणा।

समझ में आया ? पढ़े-गिने को भी अन्दर में यह भ्रमणा पड़ गयी है। परवस्तु से हमें ऐसा होता है, हम परवस्तु के काम कर देते हैं।

मुमुक्षु : ऐसा पढ़ाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा पढ़ाते हैं। मूढ़ पढ़ा हो, ऐसा पढ़े न! समझ में आया ?

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतरागदेव जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है, वे भगवान तो कहते हैं और ऐसा है कि अनन्त पदार्थ है न, भाई! तू एक ही है जगत में ? तो अनन्त हैं, वे अनन्त पदार्थ प्रत्येक अपने स्वभाव के कारण रहे हुए हैं तो उनका स्वभाव उनमें, तेरा स्वभाव तुझमें। तेरे स्वभाव को वे मदद करें, नुकसान करें - ऐसा तीन काल में नहीं होता। आहा..हा..! तथा उनके स्वभाव को तू मदद करे, दूसरे द्रव्य की सेवा करके उसकी मदद करूँ, धूल में भी नहीं है। कौन सेवा करे ? भारी बात कठिन, भाई! यह इसकी सेवा से ये मर गये कितने ही सुधरे हुए ऐसे। अपन सबकी सेवा करते हैं। सेवा अर्थात् क्या ? इस शरीर में रोग हो, उसे तू मिटा नहीं सकता और दूसरे की सेवा करने गया ?

मुमुक्षु : जनसेवा, वही प्रभु सेवा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जनसेवा की व्याख्या क्या ? जन अर्थात् क्या ? वह तो परद्रव्य है। उसकी सेवा अर्थात् क्या ? उसकी दशा ? उसकी दशा तो उससे होती है। ये सब ऐसे के ऐसे भटके न ? तुम सब आधे-आधे कपड़े पहिनकर घूमते थे। ये घूमते थे। उसमें ऐसा कि हम कुछ सेवा करते हैं, हम ऐसा करते हैं, ऐसा। सादा वस्त्र और अमुक ऐसी सेवा करते हैं। धूल में भी नहीं। सादा वस्त्र तो उसका-जड़ का है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ऐसी बात सुनना नहीं रुचती।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनना नहीं रुचती। सच्ची बात, बात सच्ची है। इन सब बहुतों को पावर चढ़ गया है न! कोई किसी की सेवा नहीं कर सकता। हैं ? तेरी पच्चीस वर्ष की जवान स्त्री मर जाये, तू बीस वर्ष का हो, मर जाये तो राख न सेवा (करके)। तुझे मार डालने का भाव है ? तब भाव में तुझे रखने का भाव है। तेरे भाव से वहाँ कुछ नहीं होता। इसी प्रकार तेरे भाव से पर में-दूसरे द्रव्य में हो जाता होगा ?

पच्चीस वर्ष का प्रिय पुत्र मरता हो। ऐसे लेह.. लेह... करता हो दो वर्ष का विवाहित (हो) भरपूर जवान जैसी स्त्री छोड़कर (मरता हो)... हाय.. हाय..! अर र! इसकी अपेक्षा विवाह नहीं किया होता (तो अच्छा था) ऐसा कहे। विवाह किया हो, तब तो ऐसा कहे लाहो ले लेते हैं परन्तु जहाँ छह महीने हुए (वहाँ पता पड़ा) क्षय है, क्षय (टीबी) का असर हो गया है। हैं... ? टीबी है। कितने समय से ? थोड़ी टीबी। शुरु होगी, फिर विवाह किया। बोला नहीं। हाय! हाय! अरे! तीसरे नम्बर में गया। हाय! हाय! क्या है ? वह तो परद्रव्य है, बापू! वह परवस्तु है। आत्मा भी भिन्न और उसके (शरीर के) रजकण भी भिन्न उससे ल्हावा लेने गया, वह मिथ्यात्व का ल्हावा लिया। लावा नहीं आता ? लावा निकलता है न ? ज्वाला-अग्नि। गुलाबभाई! आता है या नहीं परदेश में ? पर्वत में से ज्वाला (निकलती है)। यह तूने स्वयं अज्ञान की ज्वाला अग्नि की निकाली। यह मेरे और हमने ल्हावा लिया, हों! अन्तिम-पहला हमारे था न। इसलिये अन्तिम ल्हावा ले लिया। छगनभाई! मूढ़ ऐसा बोलते हैं न, पाँच व्यक्ति बैठे हों सामैया को अपने अन्तिम-पहला और तुम्हारे पास पूँजी-पैसा है। तुम्हारे कहाँ दूसरी सन्तान थी ? अपने पाँच-सात कहाँ है ? महिलायें फुरसत में हों, इसलिए ऐसा बोलें। पाँच-सात अपने कहाँ है ? सात-पाँच अर्थात् कोई अधिक है ? यह एक लड़का था। बहुत अच्छा, लो! परन्तु पुत्र तेरा कहाँ था ?

मुमुक्षु : तो किसका था ?

पूज्य गुरुदेवश्री : लड़का उसके आत्मा का, शरीर उसके जड़ का। तेरा कब था उसमें ? अब क्या करना इसमें ? मोह ने मार डाला जगत को। मिथ्या दृढ़तर मोह, महामिथ्यात्वभाव। समझ में आया ? आहा..हा... !

उन्हीं व वैसे ही शरीरादिक को आत्मा नहीं, अपितु आत्मा के समान मानता रहता है। समझ में आया ? हमारे जैसे ही हैं, ये सब हम ही हैं, एक ही हैं। भिन्न कहाँ हैं ? हमारी इच्छानुसार चलता है, देखो! लो! इच्छा हो, तब ऐसा चलता है। काम होता है या नहीं इच्छानुसार ? नहीं, नहीं। सुन तो सही! ये क्रिया तेरी इच्छा से नहीं होती, तुझे भान नहीं है। आहा..हा..! उसकी अवस्था, उसका स्वभाव उसमें है। उसकी अवस्था का ऐसा होना, वह स्वभाव तुझसे अन्य स्वभावी है। इसलिए वह तुझसे होता है, यह हराम बात होवे तो, ऐसा कहते हैं। आहा..हा..!

उसमें यह खाने बैठा हो और रोटी और ठीक से घी में तली हुई पूड़ी (हो) और आमरस बढ़िया हो। समझे न? जमादार आम का बड़ा ऊँचा आता है न? लालचोल। ऐसे खाता हो, तब मानो कि ओहो..हो..! मानो बैकुण्ठ में बैठा हो जैसे! मूढ़ है। वह तो जड़ है, मिट्टी है, रजकण-धूल है। उसकी अवस्था से तुझे सुख होता है, यह तूने कहाँ से माना? आहा..हा..! समझ में आया? गजब बात!

तब समकिती ऐसा नहीं मानता हो तो खाना छोड़ देता होगा? खाता ही कब है? सुन तो सही, तुझे पता नहीं है। वह तो जड़ की क्रिया होती है, उसे देखता है। अज्ञानी, जड़ की क्रिया होती है, उसे 'मैं करता हूँ' ऐसा मानता है। मान्यता में अन्तर है। आहा..हा..! **अपितु आत्मा के समान मानता रहता है। 'स्वानि'** है न? **'स्वानि प्रपद्यते'** ऐसा है न? शरीर और लक्ष्मी को अपनेरूप मानता है। अरे! बापू! वह परवस्तु है। तुझे - उसे कहीं आगे-पीछे कोई मेल नहीं है। समझ में आया? यह दृष्टान्त अब देते हैं। देखो! फिर देंगे।

दोहा - पुत्र मित्र घर तन तिया, धन रिपु आदि पदार्थ।
बिल्कुल निज से भिन्न हैं, मानत मूढ़ निजार्थ।।८।।

है? आठवाँ श्लोक है, आठवाँ। हिन्दी, भाई! हिन्दी, गुलाबभाई! **'पुत्र मित्र घर तन तिया,'** तिया अर्थात् स्त्री, तन (अर्थात्) शरीर। घर, **'धन रिपु'** रिपु अर्थात् दुश्मन **'आदि पदार्थ'** देह, कुल, कुटुम्ब सब लिया। **'बिल्कुल निज से भिन्न हैं,'** सर्वथा तेरे आत्मा से भिन्न है, तुझे और उन्हें कोई मेल और सम्बन्ध नहीं है। परन्तु ऐसा चिपटा है न! इसे सुविधा और मुझे नहीं। जब सुविधा हो, तब (कहता है) मुझे सुविधा और हम सुखी और यह दु:खी। मूढ़ है, दोनों प्रकार से। आहा..हा..! समझ में आया? किसे सुविधा? परद्रव्य के कारण आत्मा को सुविधा? तेरा स्वभाव भिन्न, उसका स्वभाव भिन्न। उसके कारण तुझे सुविधा कहाँ से आयी? और उसकी प्रतिकूलता के कारण तुझे प्रतिकूलता-असुविधा कहाँ से आयी? स्पर्श नहीं करता न! वह द्रव्य तुझे स्पर्श नहीं करता, तू उसे स्पर्श नहीं करता। क्योंकि सब-सब भिन्न में अपनी मर्यादा में सब रहे हुए हैं। उसमें उससे मुझे ठीक और उससे मुझे अठीक-यह मान्यता मिथ्यादृष्टि ने मूढ़ में से उत्पन्न की है। आहा..हा..! समझ में आया? **'बिल्कुल निज से भिन्न हैं,'** बिल्कुल वापस सर्वथा कहा न? **'मानत मूढ़ निजार्थ।'**

उत्थानिका – शरीर आदिक पदार्थ जो कि मोहवान् प्राणी के द्वारा उपकारक एवं हितू समझे जाते हैं, वे सब कैसे हैं, इसको आगे श्लोक में उल्लिखित दृष्टांत द्वारा दिखाते हैं –

दिग्देशेभ्यः खगा एत्य संवसंति नगे नगे।
स्वस्वकार्यवशाद्यांति देशे दिक्षु प्रगे प्रगे।।९।।

अर्थ – देखो, भिन्न भिन्न दिशाओं व देशों से उड़–उड़कर आते हुए पक्षीगण वृक्षों पर आकर रैनबसेरा करते हैं और सबेरा होने पर अपने–अपने कार्य के वश से जुदा–जुदा दिशाओं व देशों में उड़ जाते हैं।

विशदार्थ – जैसे पूर्व आदिक दिशाओं एवं अंग, बंग आदि विभिन्न देशों से उड़कर, पक्षीगण वृक्षों पर आ बैठते हैं, रात रहने तक वहीं बसेरा करते हैं और सबेरा होने पर अनियत दिशा व देश की ओर उड़ जाते हैं – उनका यह नियम नहीं रहता कि जिस देश से आये हों, उसी ओर जावें। वे तो कहीं से आते हैं और कहीं को चले जाते हैं – वैसे ही संसारीजीव भी नरकगत्यादिरूप स्थानों से आकर कुल में अपनी आयुकाल पर्यन्त रहते हुए मिल–जुलकर रहते हैं, और फिर अपने अपने कर्मों के अनुसार, आयु के अंत में देवगत्यादि स्थानों में चले जाते हैं। हे भद्र! जब यह बात है, तब हितरूप से समझे हुए, सर्वथा अन्य स्वभाववाले स्त्री आदिकों में तेरी आत्मा व आत्मीय बुद्धि कैसी? अरे! यदि ये शरीरादिक पदार्थ तुम्हारे स्वरूप होते तो तुम्हारे तदवस्थ रहते हुए, अवस्थान्तरों को कैसे प्राप्त हो जाते? यदि ये तुम्हारे स्वरूप नहीं, अपितु तुम्हारे होते तो प्रयोग के बिना ही ये जहाँ चाहे कैसे चले जाते? अतः मोहनीय पिशाच के आवेश को दूर हटा, ठीक–ठीक देखने की चेष्टा कर।।९।।

दोहा – दिशा देश से आयकर, पक्षी वृक्ष बसन्त।
प्रात होत निज कार्यवश, इच्छित देश उड़न्त।।९।।

गाथा - ९ पर प्रवचन

उत्थानिका – शरीर आदिक पदार्थ जो कि मोहवान् प्राणी के द्वारा.. मोहवान

प्राणी द्वारा, हों! **उपकारक एवं हितू समझे जाते हैं,..** ऐसे मूढ़ जीवों से वे जीव वे सब मुझे उपकारक हैं, हमारे हेतु हैं, वे हमारे समझने में आते हैं, वे सब कैसे-कैसे हैं? वे किस प्रकार हैं? उसका दृष्टान्त है। **इसको आगे श्लोक में उल्लिखित दृष्टांत द्वारा दिखाते हैं** –दृष्टान्त बताते हैं।

दिग्देशेभ्य: खगा एत्य संवसंति नगे नगे।
स्वस्वकार्यवशाद्यांति देशे दिक्षु प्रगे प्रगे।।९।।

अर्थ – देखो, भिन्न भिन्न दिशाओं.. रात्रि में आते हैं न? पाठशाला में भी पहले ऐसा आता था, भाई! पाठशाला में आता था। अब कौन जाने (क्या होगा)? दलपतराम के समय में एक श्लोक आता था। दलपतराम कवि थे न? कदड़ा। 'कवि दलपतराम डाह्याभाई' साठ वर्ष पहले जब हम पढ़ते थे, तब वे दलपतभाई (थे)। फिर उनके पुत्र थे। नानाभाई है न? वे तो यहाँ आये थे न, नानाभाई यहाँ आये थे और दूसरे भाई थे, वे सब मिले थे, हमें सब मिले थे न! उनके साठ वर्ष मनाये थे। नानाभाई के। (संवत्) १९९२ का वर्ष (था)। मर गये। कहते हैं। वह उसमें आता था कि 'एक पंखी मेलो उड़ी आकाशे आव्यो...' ऐसा कुछ आता है, ऐसा आता था। लो! अब आ गये शब्द, लो! ऐसा उसमें आता था। 'पंखी मेलो उड़ी, आकाशे आव्यो..' पंखी मेला उड़कर आकाश में आया। बैठा, सबेरा हुआ, वहाँ सब-सब चले जाते हैं। सबेरा हो वहाँ कहाँ से आये, वहाँ (ही) जाना ऐसा नियम नहीं है। चाहे जहाँ से आये और चाहे जहाँ (जाते हैं)। बारह घण्टे एक साथ बैठें तो भी एक दूसरे के सामने देखा करते हैं, रात्रि को खाते तो नहीं। बगुला बैठा हो, बगुली बैठी हो, कोई दूसरा बैठा (हो)। सौ-सौ, दो-दो सौ इकट्ठे हों, हों! हम वहाँ गये थे न (वहाँ) बहुत इकट्ठे थे। यह वह खाण्डवाला कौन कहलाता है? वढ़वान नातालिया! उसके मकान में हम उतरे थे न! छट्ठी साल में। पीछे खाली और बड़ा वृक्ष (था), इतने जानवर, इतने जानवर आते। पीछे कोई रहता नहीं था। यह करोड़पति 'नातालिया कान्तिभाई'। गुजर गये न? डॉक्टर, कान्तिभाई डॉक्टर, नानालालभाई के दामाद गुजर गये। बड़े करोड़पति गृहस्थ थे। वहाँ हम उतरे थे। पीछे वृक्ष खाली मकान खाली, कोई व्यक्ति नहीं इतने पक्षी आते शाम होवे तो वहाँ कोलाहल हो, हजारों (पक्षी) रात पड़े वहाँ चुप हो जायें। सबेरा होने पर वापस कहाँ से आये और कहाँ गये, उसका मेल

कुछ नहीं। एकदम चारों ओर से उड़ने लगें। ऐसा दृष्टान्त पहले आता था, हों! पुस्तक में आता था।

यहाँ ऐसा कहते हैं कि **भिन्न भिन्न दिशाओं व देशों से..** दिशा भिन्न और देश भिन्न। भिन्न-भिन्न देश और दिशा में से वृक्ष में उड़कर (आते हैं)। **उड़-उड़कर..** पक्षी ऐसे-ऐसे करते आते हैं न? गति करते (आते हैं)। **पक्षीगण वृक्षों पर आकर रैनबसेरा करते हैं..** रैनबसेरा—रात्रि में निवास करते हैं। कहीं से आया और कहाँ का कहाँ (जाता है)? बारह घण्टे एक साथ बैठते हैं **और सबेरा होने पर...** जहाँ सबेरा हो **अपने-अपने कार्य के वश से...** वापस किसी के कारण नहीं। वह ऐसा उड़ता है तो ऐसे जाना-ऐसा भी नहीं, अपनी इच्छा प्रमाण वे ऐसे उड़कर चले जाते हैं, वह उड़कर (चला जाये) यह उड़कर चला जाये। फिर कहाँ से आये थे, जहाँ से आये, वहाँ जाना - ऐसा भी नहीं।

अपने-अपने कार्य के वश से जुदा-जुदा दिशाओं.. वापस दिशा भी अलग। जिस दिशा से (आये हों वह) दिशा भी पड़ी रहे। आये हों पूरब से, चले जायें पश्चिम में। देश भी अलग। आये हों दूसरे देश में से। समझे न? देखो न! वे जानवर नहीं आते? कहाँ से आते हैं। मुम्बई (में) बहुत आते हैं। किस दिशा से वह जानवर आते हैं? लाखों जानवर, शाम को आते थे। मुम्बई में हम देखते थे न! यहाँ भी आते हैं। कुंजरा! कुंजरा आते हैं, यहाँ सर्दी में चार महीने आते हैं। फिर चले जाते हैं। हजारों, लाखों कहीं चले जाते हैं। कहीं बहुत-दूर हजारों गाँव चले जाते हैं, हजारों गाँव चले जाते हैं। कुंजरा आते हैं।

मुमुक्षु : यहाँ आते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यहाँ आते हैं न! पूरे देश में आते हैं, वर्षों से आते हैं। यहाँ तो हमने बहुत (देखे हैं)। यहाँ दामनगर में भी तालाब है, वहाँ तो पूरे दिन पड़े होते हैं। पूरे दिन ढ़ेर (पड़े होते हैं)। मैं पहले वहाँ जाता था न, समयसार पढ़ने। बहुत दूर, एक मील दूर, बड़ा गड्ढा था, वहाँ जाता था। कोई मनुष्य नहीं हो। वहाँ एक मील दूर, शंकर का मन्दिर और उसकी इस ओर इतने कुंजरा.. कुंजरा.. कुंजरा वहाँ पड़े रहते हैं। फिर रात्रि को खाने निकलते हैं। दिन में पड़े रहते हैं। बहुत गर्म हो न शरीर! परन्तु कहाँ से आये और कहाँ (जाये), उसका मेल नहीं होता, ऐसा। **वृक्षों पर आकर रैनबसेरा करते हैं..** उस रात्रि

का निवास करते हैं। **और सबेरा होने पर अपने-अपने कार्य के वश से जुदा-जुदा दिशाओं व देशों में उड़ जाते हैं।**

विशदार्थ – जैसे पूर्व आदिक दिशाओं.. पूर्व में से कोई पक्षी चला आवे। कोई **अंग, बंग आदि विभिन्न देशों से..** चले आवें। बहुत दूर से, हों! मुम्बई में एक पक्षी आता है, बहुत दूर से आता है। वहाँ (कोई) कहता था। कांग्रेस के हाउस में थे न? वहाँ उस कोने में से आते थे। बहुत (दूर) देश (में से) हजारों गाँव से आते थे। शाम को ऐसे लाईनसर आते थे। **अंग, बंग आदि विभिन्न देशों से उड़कर, पक्षीगण वृक्षों पर आ बैठते हैं, रात रहने तक वहीं बसेरा करते हैं..** बारह घण्टे बैठते हैं, शाम पड़ने से सबेरे तक। **और सबेरा होने पर अनियत दिशा..** लो! दिशा का निश्चित नहीं कि किस जगह जाना। जहाँ उड़ने की इच्छा हुई, वहाँ चला गया। **अनियत..** अर्थात् इस दिशा में जाना, ऐसा कोई निश्चित नहीं। **अनियत दिशा व देश की ओर उड़ जाते हैं..** दिशा और देश दोनों। इस देश में से आये, इसलिए इस देश में जाना और इस दिशा से आये, इसलिए इस दिशा में जाना – ऐसा कुछ नहीं।

उनका यह नियम नहीं रहता कि जिस देश से आये हों, उसी ओर जावें। वे तो कहीं से आते हैं और कहीं को चले जाते हैं – वैसे ही संसारीजीव भी नरकगत्यादिरूप स्थानों से आकर.. समझ में आया? आहा..हा..! एक बार वह प्रश्न किया था, कहा न? हमारे यह आनन्दजी, मनसुख की जब सगाई की न? 'चित्तल'! तब हम वहाँ थे न? (संवत्) १९८७, ८६ का अमरेली (था) तब नानालालभाई आये थे। सगाई हुई, वहाँ उन्होंने पूछा कि यह क्या (होगा)? (मैंने कहा) यह कन्या आयी होगी थोर में से और यह पति आया होगा कोई नरक में से, कोई मेल नहीं। समझ में आया? यह किससे (इकट्ठे हुए)? ऐसा कुछ उन्होंने प्रश्न पूछा था। ऐसा कि यह सम्बन्ध होगा न? कहा, सम्बन्ध कुछ नहीं होता। एक स्त्री आयी कहीं से-थोर में से मरकर आयी हो और वह (वर) कहीं से मरकर आया हो तीड़ में से। दोनों यहाँ इकट्ठे (हो गये)। कर्म की योग्यता के ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल हों (तो) सम्बन्ध हो जाता है। ऐसा कुछ लेना-देना नहीं होता। कुछ लेना और देना नहीं होता। आहा..हा..! समझ में आया?

'चित्तल' में प्रश्न हुआ था। ऐसा कि ये सब इकट्ठे (हुए तो कुछ पूर्व का सम्बन्ध

होगा न)। (कहा) - कुछ नहीं होता। एक मरकर कहीं से आवे (और) एक मरकर कहीं से आया हो। समझे न? एक कहीं से मरकर पक्षी (हुआ) हो और वह फिर मनुष्य हुआ हो। एक टिड्डी हो, कहीं जीव खाता हो, उसमें से मरकर स्त्री हुआ हो। ऐसे दोनों इकट्ठे हों, उसमें क्या है परन्तु? धूल और धाणी कुछ नहीं। एक-दूसरे का सम्बन्ध लेना और देना कुछ नहीं होता परन्तु जहाँ पच्चीस वर्ष इकट्ठे रहें, यह बारह घण्टे इकट्ठे रहते हैं। ये (पक्षी) रात में बारह घण्टे रहते हैं, यह पच्चीस-पचास वर्ष इकट्ठे रहें वहाँ मानते हैं कि ये सब अपने हैं। धूल में भी तेरे नहीं, सुन न अब! आहाहा! कहाँ का आया और कहाँ गया?

अरे! मेरे पुत्र, मेरे पुत्र करे। बाप हो तो (ऐसा बोले), अरे! यह लड़का यदि होता न तो मुझे मरण में ठीक पड़ता, अवसर से परदेश में भेजा। ठीक! परन्तु तेरा पुत्र कहाँ था? ऐसे के ऐसे भ्रमणा के पोटले खड़े करके, जानबूझकर मूढ़ परद्रव्य के स्वभाव में मुझे ठीक पड़ता है और अठीक मानकर भटक रहा है। अपनी जाति की खबर नहीं होती। मैं एक आत्मा ज्ञान और आनन्दकन्द हूँ, मेरा स्वभाव तो ज्ञान और आनन्द है। वह मेरा ज्ञान और मेरा आनन्द मुझमें से आता है। कोई किसी के निमित्त में से नहीं आता। इन इन्द्रियों से ज्ञान नहीं आता, इन्द्रियों से सुख नहीं आता तो बाहर में से कहाँ से आता था? समझ में आया?

कहते हैं **संसारीजीव भी नरकगत्यादिरूप..** कोई नरक में से आया हो, लो! कोई पशु में से आया हो। घर में दस व्यक्ति हों, कोई नरक में से आया हो, कोई पशु में से आया हो, कोई पक्षी में से आया हो। समझे न? कोई टिड्डी में से आया हो, कोई चींटी मरकर महिला हुई हो-स्त्री हुई हो, कोई देव मरकर भूतड़ा-बूतड़ा में से मरकर आया हो। घर के दस-बारह लोगों में (ऐसा हो)। अलग-अलग **नरकगत्यादिरूप स्थानों से आकर कुल में अपनी आयुकाल पर्यन्त रहते हुए..** वे पक्षी चार पहर वृक्ष में रहते हैं। यहाँ इसका आयुष्य जितना हो, लेकर (आया हो), उतने काल यहाँ रहता है।

मुमुक्षु : ऐसी बात सुनकर बहम पड़ जाये न।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे बहम नहीं पड़ता। इसके लिये तो कहते हैं कि बहम कर अब। कोई तेरा तीन काल में नहीं है। आहाहा! उनके सामने ऐसे टकटकी लगाकर देखता (रहे) मरते भी (ऐसा) हो। पैंतीस वर्ष की स्त्री और वह चालीस वर्ष का हो और मरता

(देखे)। अरे रे! अब क्या करोगे तुम? दूसरा विवाह करोगे? ये तीन लड़के हैं न! हाय! हाय! दो-पाँच लाख की पूँजी हो और वह (स्त्री) पैंतीस वर्ष में मरती हो और यहाँ चालीस वर्ष हो (तो ऐसा लगता है कि) यह निश्चित नया विवाह करेगा। ये तीन लड़के बेचारे गरीब यदि वह ऐसी कठोर आवे तो ये बेचारे... यह भी नहीं माने और वह भी नहीं माने। व्यर्थ के फिर रोते हैं। वह भी रोता है और वह भी रोती है। आहाहा!

मुमुक्षु : अब करना क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ दे। पर मेरे और पर के कारण मुझे सुख-दुःख होता है, यह मान्यता छोड़ दे। आहाहा!

आयुकाल पर्यन्त.. वे (पक्षी) चार पहर रहते हैं। यह तो थोड़ा (काल) भी उसमें रहता है। उसमें क्या है? **मिल-जुलकर रहते हैं,..** लो! आयुपर्यन्त तक घर में दस व्यक्ति, पन्द्रह व्यक्ति साथ रहे। एक-दूसरे एक-दूसरे लड़कियाँ और लड़कियाँ और भाई तथा छोटे और बड़े इसे हो न, यह मेरा छोटा भाई है, यह मेरी बहिन है और यह बड़ी बहिन है और यह छोटी बहिन है... कुछ नहीं होता तेरा और कुछ नहीं होता तू उनका। कोई नहीं होता तेरा और तू नहीं होता किसी का। तेरा तू और उनका वह। आहाहा! परन्तु भ्रमणा ने मार डाला है न! ये इकट्ठे हों, फिर एक-दूसरे चले जायें। उसमें क्या है?

और फिर अपने अपने कर्मों के अनुसार,.. देखो! ये इकट्ठे हुए, पाँच-पच्चीस (वर्ष) आयुष्य प्रमाण रहे और जैसे वापस भाव किये और कर्म बाँधे, (उन्हें भोगने को) उड़कर चले जाते हैं। उनकी गति कोई नरक में गया और कोई पशु में गया और कोई चींटी में गया और कोई चींटा में चला जाता है। कोई लेना या देना नहीं है। समझ में आया? यह तो स्व-पर पदार्थ भिन्न है। उन्हें एक मानना, वह मिथ्यात्व है, यह बताते हैं, भाई! स्व और परपदार्थ दोनों अत्यन्त भिन्न हैं। उन्हें मेरा मानना और मुझसे सुख-दुःख उन्हें होता है और उनसे सुख-दुःख मुझे होता है, यह तेरी पाप की भ्रमणा है, मिथ्यात्व का पाप है - ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पर का नहीं कर सकता, ऐसा इसमें कहाँ आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर नहीं सकता, ऐसा इसमें कहाँ नहीं आया? इसका स्वभाव

इसका। वह तू कहाँ कर सकता है उसे ? स्त्री और पुत्र सेवा करे। धूल भी नहीं करते, अब सुन न ! वह तो राग इसमें करते हैं, देह की क्रिया देह के कारण होती है। इस देह को उसकी क्रिया छूती भी नहीं। सेवा कौन करता था तेरी ? परन्तु इसने पागलपन का सन्निपात किया है न ! सन्निपात के... भूल गया, भूल गया। सत्य क्या है और असत्य क्या सेवन करता हूँ ? (यह भूल गया)।

मुमुक्षु : यह पागलपन तो महापुरुष के अतिरिक्त कोई निकाल नहीं सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : महापुरुष हुए बिना, यह निकाल सकता ही नहीं। ठीक न ! शशीभाई ! आहाहा ! रंक हुआ, रंक - भिखारी। आहाहा ! दीवार के पास जाकर माँगे, यह दीवार गिरना नहीं, हों ! नहीं तो मैं मरूँगा। परन्तु अब तू वहाँ से हट जा न ! आहाहा !

कहते हैं कि अपने आयुकालपर्यन्त सब इकट्ठे रहते हैं। फिर अपने कर्म अनुसार... आहाहा ! एक थाली में जीमनेवाले, तू देख ! एक थाली में जीमनेवाले श्रेणिक राजा, उनका पुत्र अभयकुमार, उनकी रानियाँ... एक घर में जीमनेवाले। श्रेणिक मरकर नरक में गया, अभयकुमार स्वर्ग में गया, कितनी ही रानियाँ त्यागी होकर स्वर्ग में गयीं। कहाँ इकट्ठे और किसे लेना या देना ! आहाहा !

सीताजी, लक्ष्मण और राम, लो ! तीनों इकट्ठे रहनेवाले। तीनों वनवास में गये। ओहो ! राम और लक्ष्मण, राम और सीताजी की लक्ष्मण सेवा करते हैं। जंगल में, वन में चार-चार कोस (चले), उघाड़े पैर, सीताजी का शरीर कोमल, (सीताजी कहती है) थक गयी हूँ, अब मैं नहीं चल सकती। (लक्ष्मण कहते हैं) - बैठो माता ! यहाँ बैठो। मैं फूल लेकर आता हूँ, फूल ले आकर फूल को (बिछा दूँ) जंगल में से मण-दो मण फूल ले आते हैं (और) बिछाकर बैठाते हैं। सीताजी और राम। स्वयं प्रतिदिन भोजन बनाते हैं, लक्ष्मण स्वयं ! वासुदेव - तीन लोक के धनी। कला भी सब आती है न ! राजकुमार थे न ! सब कला (आती थी)। सूखी लकड़ियाँ लाकर रोटी-दाल, सब्जी, चावल, पानी... ऐसा बनाते हैं। इस प्रकार फूल, वृक्ष की खबर होती है कि इस दाल में डालेंगे तो अधिक और ऐसा होगा। वे भाई लक्ष्मण ! मरकर गये नरक में, सीताजी गये स्वर्ग में, राम गये मोक्ष में। आहाहा ! सबके परिणाम सब हैं, उसमें किसी को लेना देना नहीं है।

रामचन्द्रजी मोक्ष पधारे, सीताजी अभी स्वर्ग में है, अभी बारहवें देवलोक में है, लक्ष्मण नरक में है। सीताजी को ऐसा लगा कि अरे! मेरा देवर ऐसा था, मेरी सेवा करता था न! अर र! नरक में (गया)? वहाँ लेने गये। उठावे किसे? पिण्ड (बन गया)। जैसे पारे का हिरण पारा भिन्न पड़ जाये, वैसे ये लेने गये तो ऐसे टुकड़े हो गये। हे देव! तुम वहाँ वापस जाओ। हमारे पाप से हम नरक में आये हैं, यह तुम नहीं छुड़ा सकते हो। आहाहा! अभी नरक में है और सीताजी स्वर्ग में है। नहीं छुड़ा सकते हो। जाओ, तुम्हारी तो दया है परन्तु हमारे पाप के उदय में तुम क्या करोगे? लाखों, अरबों, अरबों वर्ष, असंख्य अरब वर्ष नरक में रहेंगे। आहाहा! वे वहाँ सब, दो सौ, हजार वर्ष तक ऐसा जरा... शरीर का वह और यह वासुदेव। एक बाण में मारा रावण को और एकदम एक चक्र चलाया, वहाँ रावण का... वह भी अभी नरक में पुकार-पुकार करता है।

मुमुक्षु : रावण जैसा पाप किया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या कहा? यह किसकी बात चलती है? ले! लक्ष्मण की बात चलती है या नहीं? वासुदेव थे। निदान किया हो, मरकर नरक जाये, वह सब पूर्व में निदान किया हो। ये रामचन्द्रजी सगे भाई, जिनकी सेवायें की, वे स्वयं मोक्ष पधारे, सीताजी स्वर्ग में है। जिसके-जिसके जैसे भाव किये, वे स्वतंत्र (किये हैं)। किसी को लेना-देना नहीं होता। कहो, समझ में आया?

छोटा भाई था। छोटे को बहुत रोग हुआ, फिर बड़े भाई ने उसकी सेवा करके अण्डे खिलाये, अण्डा और विंडा खिलाये। मरकर गया (नरक में)। बड़ा (भाई) नारकी हुआ, वह छोटा परमाधामी हुआ। नरक में मारने आया। अरे..भाई! मैंने तेरे लिये पाप किये हैं! किसने कहा था, तू मेरे लिये कर। समझ में आया? छोटे भाई के रोग के लिये उससे पूछे बिना चुपचाप अण्डे और अमुक (खिलाया)। डॉक्टर कहे - खिलाओ। नहीं तो वह है। मक्खन के साथ मिलाकर थोड़ा-थोड़ा अण्डे का रस देना। वह मरकर नरक में गया, बड़ा भाई, सेवा की वह (नरक में गया) और (छोटा) मरकर परमाधामी हुआ। मरते समय जरा परिणाम कुछ ठीक हुए कि अर..र! ऐसा रोग और यह! परमाधामी उस नारकी को मारने आता है। मार पछाड़... भाईसाहब परन्तु तेरे लिये (पाप किये थे।) (तब छोटा भाई कहता

है), अपन कहाँ एक हैं ? जेचन्दभाई ! ऐसा एक बार नहीं, हों ! ऐसा अनन्त बार (हुआ है)। यह भी अनादि का है। यहाँ कहाँ वहाँ इतने में आ गया है ? मोरबी में आया और इतने वर्ष से (रहता है), वह आत्मा इतना है ? नहीं। आहाहा !

भाई ! तू तेरे द्रव्य की नजर कर न ! भाई ! ऐसा कहते हैं कि तेरा द्रव्य पड़ा है, प्रभु ! वस्तु है न ! भाई ! वह आनन्द और ज्ञान के भण्डार से भरपूर है, उसकी तो नजर कर, उसका तो विश्वास कर कि मैं आत्मा ही हूँ, शान्त और आनन्द हूँ। इस परपदार्थ के साथ मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है। आहा..हा.. ! इसने कभी भी विपरीतता-विपरीतता छोड़ी नहीं और अविपरीतता की नहीं। बाहर में कुछ मान लिया, कुछ नीति और कुछ नैतिक कर्तव्य और लोगों की सेवा को, या तो कोई दया-दान की वृत्ति की क्रिया और और कुछ हुआ वहाँ... ओहोहो ! हमने तो बहुत किया अब। जाओ भटकने।

मुमुक्षु : दूसरे नहीं करते, ऐसा किया न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं किया, क्या करते थे अब ? समझ में आया ?

कहते हैं **अपने अपने कर्मों के अनुसार, आयु के अंत में देवगत्यादि स्थानों में चले जाते हैं।** कोई देव में जाये, अरे ! लड़का देव में जाये, बाप नरक में जाये। आहाहा ! अभयकुमार, ऐसे दोनों को कितना प्रेम ! अभयकुमार बहुत बुद्धिशाली था, बहुत बुद्धि। तुम्हारी बहियों में नहीं लिखते ? अभयकुमार की बुद्धि होओ ! बहुत बुद्धिवाला (था)। पिताजी की ऐसी चेष्टा जान ले। शोक में हो तो चेष्टा (देखकर पूछे) क्यों पिताजी, क्या है ? कहने जैसी बात हो तो कहो, बापूजी ! मैं उसका स्पष्टीकरण कर दूँगा। भाई ! तुझसे मुझे अलग क्या होगा ? बात करे। वह मरकर नरक में गया। हाय ! हाय ! चौरासी हजार वर्ष की स्थिति में नरक में है, अभी श्रेणिक राजा पहले नरक में है। सात नरक हैं न वहाँ। कम से कम दस हजार वर्ष की स्थिति (होती है), यह चौरासी हजार में है। अभयकुमार स्वर्ग में गया। किसका करना इसमें ? कहते हैं। एक व्यक्ति कहता है कि यह महाराज का सुने तो व्यापार के व्यापार...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु धन्धा कौन कर सकता है ? तू करता है तो धन्धा तो उसके

कारण से-जड़ के कारण से चलता है, क्या तुझसे चलता होगा ? ऐई ! गुलाबभाई ! बहियां-वहियां गुलाबभाई करते होंगे ? बिलकुल नहीं। यह बही जड़ है। जड़ की पर्याय से रचित है। इसे आत्मा करे ?

मुमुक्षु : बुद्धि काम करे...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में, बुद्धि यहाँ रही और बही वहाँ रही। बुद्धि घुस गयी वहाँ ?

मुमुक्षु : कैसे लिखे...

पूज्य गुरुदेवश्री : लेख उसके कारण से-जड़ के कारण से होते हैं।

मुमुक्षु : इतनी सरस बातें...

पूज्य गुरुदेवश्री : सरस की व्याख्या क्या ? जड़ के परमाणु की उस अवस्था के काल में वह अवस्था होती है। मूढ़ मानता है कि मेरे कारण होती है। यह महाभ्रमणा असत्य की सेवन करता है - ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो वह का वह भाव है। वहाँ अन्दर परमाणु की अवस्था होनी हो, वैसी होती है। वह जड़ की अवस्था है, क्या आत्मा की है ? हाथ ऐसे-ऐसे हो जाये, ऐसे सर्दी का मौसम हो न ठीक से...

मुमुक्षु : अक्षर बारीक...

पूज्य गुरुदेवश्री : लिखे अब। एक कलम भी ऐसे चले, वह आत्मा का अधिकार नहीं है। अंगुली ऐसे चले, वह आत्मा का अधिकार नहीं है। वह जड़ की अवस्था है। यह आत्मा तो ज्ञान करे या अभिमान करे कि मैंने किया। दूसरा कुछ है नहीं।

मुमुक्षु : हमारे शास्त्र हमारे पास लिखाये ऐसा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब बातें, यह सब बातें। बहुत सब हमने देखे हैं। उनकी सब पोल उघाड़ें तो सब समझने जैसे होते हैं। कहो, समझ में आया ? आहाहा !

अरे ! स्व और पर। बापू ! तू और पर कौन है, इसकी तुझे खबर बिना (अटक रहा है)। पर की चीजें उनके कारण आकर खड़ी रही, उनके कारण अवधि पूरी होने पर चली

जायेगी। आहाहा! स्त्री मरकर स्वर्ग में जाये, पति मरकर नरक में जाये। इसमें किसका करना? समझ में आया? पति के परिणाम बुरे हों (तो) नरक में जाये, स्त्री के परिणाम ठीक हों तो स्वर्ग में जाये। उसमें सम्बन्ध क्या लेना और देना? कहो, यह बात ठीक होगी? आहाहा! बापू! तेरी पर से भिन्नता तुझे भासित नहीं होती और तुझसे वे भिन्न, ऐसा तुझे भासित नहीं होता। है, वैसा भासित नहीं होता? भिन्न हैं, वे तुझे भिन्न भासित नहीं होते तो अब तुझे सुख का कारण हो किस प्रकार? आहाहा! समझ में आया?

उस फकीर ने नहीं कहा था? 'नूरजहाँ'! उसका तेज था न रानी का? जहाँगीर अन्दर बैठा था। एक फकीर ने सुना होगा कि इसकी रानी बहुत सुन्दर है। बंगले के द्वार-द्वार बन्द होंगे। उसे कुछ लब्धि होगी कोई तो अन्दर गया। राजा और रानी बैठे थे। बहुत सुन्दर थी। नूरजहाँ जगत का तेज सब वहाँ (था)। उसके एक-एक अवयव में कोमलता.. कोमलता.. कोमलता.. कोमलता.. कोमलता.. कोमलता.. कोमलता.. उसका नाम रूप। दूसरा क्या रूप था? यह अवयव और यह सब यह एक-एक पोर और एक-एक यह और एक-एक वह तो उसका दिखाव। बहुत सुना था, गया, बैठा, ऐसा देखा। ऐसे बैठे थे। ऐसा कहा - क्यों सांई ऐसा क्यों किया? (फकीर कहता है) मैंने सुना था कि तेरी रानी बहुत रूपवान है परन्तु मुझे नहीं लगी। साहेब! हमारी दृष्टि से रूपवान, तुम्हारी दृष्टि से नहीं। मेरी-जहाँगीर की दृष्टि से इसे देखो। तेरी दृष्टि कहाँ से लाना? प्रेम की दृष्टि से देखो तो इसमें रूप दिखेगा। तुम्हें प्रेम नहीं और तुम इस दृष्टि से देखो तो रूप नहीं दिखेगा। इसी प्रकार विपरीत दृष्टि से देखे और यह मेरा मानता है। सुलटी दृष्टि से देख तो वे तेरे हैं नहीं। आहाहा!

कहते हैं **चले जाते हैं। हे भद्र! जब यह बात है, तब हितरूप से समझे हुए,..** हितरूप समझे न? यह सब हमारे हितरूप के ही हैं। स्त्री, पुत्र... आहाहा! क्या हमारा हित, बापू! दूसरे की स्त्री होगी परन्तु मेरी अलग, यह तुम्हें पता नहीं पड़ेगा। व्यर्थ का मूढ़ है, पागल है। धूल में भी नहीं, सुन न! मूर्ख का बड़ा पिण्ड एकत्रित किया है। कहते हैं **जब यह बात है, तब हितरूप से समझे हुए, सर्वथा अन्य स्वभाववाले स्त्री आदिकों में तेरी आत्मा व आत्मीय बुद्धि कैसी? अरे! यदि ये शरीरादिक पदार्थ तुम्हारे स्वरूप होते तो तुम्हारे तदवस्थ रहते हुए, अवस्थान्तरों को कैसे प्राप्त हो जाते?** तो यदि

तेरा हो तो तेरी अस्ति में उनकी अवस्थान्तर होकर चले जाते हैं, ऐसा कैसे बने ? समझ में आया ? तेरे हों तो तेरे रहने पर भी, तू बैठा होने पर भी वे अवस्थान्तर करके चले जाते हैं। तेरे हों, वे ऐसे कैसे फेरफार हों ? भान नहीं होता तुझे। **तुम्हारे तदवस्थ...** तेरी अस्ति रहते हुए - ऐसा कहते हैं। **अवस्थान्तरों को कैसे प्राप्त हो जाते ?** लो ! बैठा हो और रोग में सड़े, यह बैठा हो और वह रोग में सड़े। क्या करे परन्तु अब ? आहाहा !

यदि ये तुम्हारे स्वरूप नहीं अपितु तुम्हारे होते तो प्रयोग के बिना.. तेरे व्यापार बिना वे **ये जहाँ चाहे कैसे चले जाते ?** तेरी इच्छा के बिना जहाँ इनकी इच्छा और जहाँ कर्म है, उस अनुसार चले जाते हैं। तेरे प्रयोग से जाते हैं ? तेरी इच्छा से जाते हैं वहाँ ? (नहीं), तो किसका मान बैठा है तू ? **अत: मोहनीय पिशाच के आवेश को दूर हटा, ठीक-ठीक देखने की चेष्टा कर।** देखो ! भाई ! मोहनीय के पिशाच / भूत को छोड़ और तू तथा पर दोनों भिन्न-भिन्न हैं, उन्हें ठीक-ठीक देखने की दृष्टि कर तो तुझे विवेक होगा और तो तुझे भान होगा तो तुझे दु:ख मिटेगा और सुख होगा।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)